पटना उच्च न्यायालय में

सिविल रिट क्षेत्राधिकार वाद संख्या 8702/2015

==========

त्रिभुवन सिंह पुत्र स्वर्गीय भागवत सिंह, निवासी ग्राम- पोझी, पुलिस स्टेशन- मरहोरा, जिला- सारण, छपरा।

.....याचिकाकर्ता/ओं

बनाम

1. बिहार राज्य
2. पुलिस महानिरीक्षक, तिरहुत रेंज-मुज़फ़्फ़रपुर, जिला-मुज़फ़्फ़रपुर।
3. पुलिस महानिरीक्षक, मुज़फ़्फ़रपुर रेंज, मुज़फ़्फ़रपुर, जिला-मुज़फ़्फ़रपुर।
4. पुलिस अधीक्षक, सीतामढ़ी, जिला-सीतामढ़ी।
5. अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक-सह-विभागीय कार्यवाही अधिकारी, जिला-सीतामढ़ी।
6. सीतामढ़ी में पुलिस उपाधीक्षक मुख्यालय-सह-प्रतिनिधि अधिकारी।

.....प्रतिवादी/ओं

==========

उपस्थिति :

याचिकाकर्ता/ओं की ओर से : श्री मुकेश्वर दयाल, अधिवक्ता
श्री दिलीप कुमार, अधिवक्ता

प्रतिवादी/ओं की ओर से : श्री मनीष कुमार, जीपी-4
श्री संजय पारसमणि, एसी से जीपी-4

==========

सेवा कानून---बिहार सरकारी सेवक (वर्गीकरण, नियंत्रण एवं अपील) नियम, 2005 (सीसीए नियम)---नियम 17(4)---विभागीय कार्यवाही---प्रस्तुतकर्ता पदाधिकारी की अनुपस्थिति---याचिकाकर्ता, ए.एस.आई. की बर्खास्तगी आदेश को रद्द करने के लिए रिट याचिका----दलील है कि पूरी विभागीय कार्यवाही कानून की दृष्टि से गलत है क्योंकि यह प्रस्तुतकर्ता अधिकारी

की अनुपस्थिति में की गई थी---निष्कर्ष: पुलिस अधिकारियों के लिए, चाहे वे राजपत्रित हों या अराजपत्रित, उनके खिलाफ अनुशासनात्मक कार्रवाई करने के लिए बिहार सीसीए नियम, 2005 लागू होंगे---याचिकाकर्ता के खिलाफ एकत्र किए गए साक्ष्य को पेश करने या साबित करने के लिए कोई प्रस्तुतकर्ता अधिकारी मौजूद नहीं था---ऐसी परिस्थितियों में जांच अधिकारी आरोपों को कायम रखने के लिए पर्याप्त सबूतों की जांच करने का कर्तव्य अपने ऊपर नहीं ले सकते थे---प्रस्तुतकर्ता अधिकारी की अनुपस्थिति में की गई कोई भी विभागीय कार्यवाही कानूनी रूप से त्रुटिपूर्ण है---आरोपित आदेश को खारिज और अलग रखा गया---प्रतिवादी अधिकारियों को आठ महीने की अवधि के भीतर एक नई जांच करने की स्वतंत्रता दी गई है, ऐसा न करने पर आरोप पत्र स्वतः ही खारिज हो जाएगा। **(पैरा- 2, 3, 5, 10-12)**

1996 (1) पीएलजेआर 401, सीडब्ल्यूजेसी नंबर 25445 ऑफ 2019, 2017(4) पीएलजेआर 195, एलपीए नंबर 507 ऑफ 2017 **…….पर भरोसा किया गया**

पटना उच्च न्यायालय का निर्णय आदेश

==========

न्यायालय: माननीय न्यायमूर्ति डॉ. अंशुमान

मौखिक निर्णय

दिनांक: 04-02-2025

याचिकाकर्ता के विद्वान वकील और राज्य के विद्वान वकील को सुना।

2. वर्तमान रिट याचिका प्रतिवादी प्राधिकारी को निर्देश देने के लिए दायर की गई है कि वह उप महानिरीक्षक, तिरहुत रेंज, मुजफ्फरपुर द्वारा पारित ज्ञापन संख्या 229/सा शा दिनांक 26.01.2014 (रिट याचिका के अनुलग्नक-4) तथा पुलिस महानिरीक्षक, मुजफ्फरपुर द्वारा पारित ज्ञापन संख्या 1092 दिनांक 27.05.2014 (रिट याचिका के अनुलग्नक-4 ए) के तहत याचिकाकर्ता की बर्खास्तगी के आदेश को रद्द करे। याचिकाकर्ता की आगे की प्रार्थना पुलिस महानिदेशक, बिहार, पटना द्वारा अनुशासनात्मक कार्यवाही अपील संख्या 29/2013 (रिट याचिका के अनुलग्नक-8 में निहित) में ज्ञापन संख्या 5029 दिनांक 20.11.2014 के तहत पारित आदेश को रद्द करने की है।

3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने दलील दी कि विभागीय कार्यवाही कानून की दृष्टि से गलत है, क्योंकि यह प्रस्तुतकर्ता अधिकारी की अनुपस्थिति में की गई। उन्होंने आगे दलील दी कि याचिकाकर्ता पुलिस विभाग में एएसआई था और उसके खिलाफ विभागीय कार्यवाही बिहार सरकारी सेवक (वर्गीकरण, नियंत्रण एवं अपील) नियम, 2005 (जिसे आगे 'सीसीए नियम, 2005' कहा जाएगा) के तहत की गई। विद्वान अधिवक्ता ने जोर दिया कि सीसीए नियम, 2005 के नियम 17(4) में प्रस्तुतकर्ता अधिकारी पर साक्ष्य प्रस्तुत करने और गवाहों की जांच करने का अनिवार्य कर्तव्य डाला गया है, जो नहीं किया गया। इसके बजाय, जांच अधिकारी ने खुद यह भूमिका निभाई।

4. उन्होंने आगे कहा कि ***पंचानन कुमार बनाम बिहार राज्य विद्युत बोर्ड एवं अन्य, 1996 (1) पीएलजेआर 401*** में रिपोर्ट किए गए मामले में यह माना गया था कि

विभाग की ओर से मामला प्रस्तुत करने और मामले की सत्यता की जांच करने में जांच अधिकारी की कार्रवाई स्पष्ट रूप से इंगित करती है कि वर्तमान मामले में जांच अधिकारी एक निष्पक्ष और अपक्षपाती अधिकारी के रूप में अपने कर्तव्य का निर्वहन करने में विफल रहा है। विद्वान वकील ने आगे कहा कि विभागीय कार्यवाही में प्रस्तुतकर्ता अधिकारी की नियुक्ति करने में विफलता के घोर उल्लंघन के कारण पूरी कार्यवाही कानून की दृष्टि से गलत है। दूसरी ओर, राज्य के विद्वान वकील ने कहा कि वर्तमान मामले में विभागीय कार्यवाही पुलिस मैनुअल के अनुसार ही संचालित की जानी चाहिए। इसलिए याचिकाकर्ता के वकील द्वारा दावा किया गया लाभ प्रदान नहीं किया जा सकता। उन्होंने कहा कि पूरी कार्यवाही कानून के अनुसार की गई है और उक्त कार्यवाही में कोई अवैधानिकता नहीं है। उन्होंने आगे कहा कि मूल प्राधिकारी, अपीलीय प्राधिकारी या स्मारक प्राधिकारी द्वारा पारित आदेशों में कोई अवैधानिकता नहीं है। इसलिए वर्तमान रिट याचिका खारिज की जानी चाहिए।

5. पक्षों की सुनवाई के बाद दो बिंदुओं पर विचार किया जाना है। पहला बिंदु यह है कि क्या विभागीय कार्यवाही पुलिस मैनुअल के अनुसार की जानी चाहिए और क्या इस मामले में सीसीए नियम, 2005 लागू नहीं है। दूसरा बिंदु यह है कि यदि सीसीए नियम, 2005 लागू है तो प्रस्तुतकर्ता अधिकारी की अनुपस्थिति याचिकाकर्ता के खिलाफ विभागीय कार्यवाही को प्रभावित करेगी या नहीं।

6. बिहार पुलिस के कर्मचारियों के मामले में सीसीए नियम, 2005 की प्रयोज्यता के प्रश्न का परीक्षण इस न्यायालय द्वारा मो. गियाउल हक बनाम के मामले में किया गया है। बिहार राज्य एवं अन्य ने सी.डब्लू.जे.सी. संख्या 25445/2019 दिनांक 06.11.2023 में पारित किया। जिसके पैरा 15 से 17 को निम्नानुसार उद्धृत किया गया है:-

"15. इस पृष्ठभूमि में, यह इस न्यायालय के लिए बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि पुलिस अधिकारियों के लिए चाहे वे राजपत्रित हों या अराजपत्रित, उनके खिलाफ अनुशासनात्मक कार्रवाई करने के लिए बिहार सी.सी.ए. नियम, 2005 लागू होगा। इस मामले के मद्देनजर, यह न्यायालय प्रतिवादी के इस तर्क को खारिज करता है कि पुलिस मैनुअल केवल इसलिए लागू होगा क्योंकि पुलिस मैनुअल में ही यह संकेत दिया गया है कि अनुशासनात्मक कार्रवाई अनुशासनात्मक नियम 1930 एवं 1935 के अनुसार चलेगी, जिसे बिहार सी.सी.ए. नियम, 2005 द्वारा प्रतिस्थापित किया गया है। बिहार पुलिस मैनुअल के नियम 824 ए को बिहार सी.सी.ए. नियम, 2005 के नियम 32 के साथ पढ़ने के पश्चात् पुलिस कर्मियों के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्रवाई में नियम की प्रयोज्यता के बारे में मुद्दा स्पष्ट किया जाता है कि बिहार सी.सी.ए. नियम, 2005 सभी प्रकार के पुलिस कर्मियों पर लागू होगा।

16. जब यह स्पष्ट है कि वर्तमान मामले में बिहार सी.सी.ए. नियम, 2005 की प्रयोज्यता है, तब यह प्रश्न उठेगा कि वर्तमान मामले में प्रस्तुतकर्ता पदाधिकारी की नियुक्ति की गई है या नहीं, तथा क्या प्रस्तुतकर्ता पदाधिकारी ने बिहार सी.सी.ए. नियम, 2005 में उल्लिखित अपने किसी कर्तव्य का निर्वहन किया है, जिस उद्देश्य से उसकी नियुक्ति की गई थी। उक्त नियमों के अवलोकन के पश्चात यह स्पष्ट होता है कि प्रस्तुतकर्ता पदाधिकारी की भूमिका सर्वप्रथम नियम 17(6)(4), द्वितीय परन्तुक (17)(8)(क), तृतीय नियम 17(11), चतुर्थ नियम 17(14), पंचम नियम 17(15), षष्ठम नियम 17(16), सप्तम नियम 17(19) तथा अन्तिम नियम 17(23)(ii)(घ) में निर्धारित की गई है।

17. इस मामले में यह न्यायालय पाता है कि प्रस्तुतकर्ता पदाधिकारी की नियुक्ति के पश्चात उन्होंने जांच रिपोर्ट पर हस्ताक्षर करने के

अतिरिक्त उपरोक्त आठ नियमों में वर्णित अपने किसी भी कर्तव्य का निर्वहन नहीं किया है। अतः यह न्यायालय मानता है कि प्रस्तुतकर्ता पदाधिकारी द्वारा जो भी कार्य किया जाना चाहिए था, वह जांच पदाधिकारी द्वारा स्वयं किया गया है। इसलिए, इस आधार पर यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि जांच कार्यवाही जिसके परिणामस्वरूप सजा हुई अर्थात सजा आदेश और अपीलीय आदेश द्वारा अंतिमता प्राप्त हुई, जो अनुलग्नक-4 में ज्ञापन संख्या 500 दिनांक 02.03.2019, अनुलग्नक-16 में ज्ञापन संख्या 2288 दिनांक 05.08.2019 और अनुलग्नक-17 में ज्ञापन संख्या 1570 दिनांक 30.10.2019 के तहत निहित है, संधारणीय नहीं है और रद्द किए जाने योग्य है। मामले का दूसरा पहलू जिस पर याचिकाकर्ता के वकील ने इस न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया है, वह है साक्ष्यों की प्रति जो याचिकाकर्ता को दी गई है, जो रिट याचिका के साथ संलग्न है, जो अनुलग्नक-7 के अनुसार पृष्ठ 33 से आगे है, जिसमें गवाहों की जांच है, लेकिन उन कागजातों पर न तो गवाहों के हस्ताक्षर हैं और न ही जांच अधिकारी के। केवल डॉक्टर की जांच के मामले में डॉक्टर और जांच अधिकारी के हस्ताक्षर हैं।"

7. इसलिए, इस न्यायालय का विचार है कि वर्तमान मामले में सीसीए नियम, 2005 लागू है। दूसरे प्रश्न का निर्णय करने के लिए, याचिकाकर्ता द्वारा **पंचानन कुमार (सुप्रा)** के मामले में दिए गए निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ 11 और 12 को उद्धृत करना आवश्यक है:-

"11. पक्षों के परस्पर विरोधी तर्कों पर विचार करते हुए, इस न्यायालय की राय है कि इस मामले में जांच दोषपूर्ण है, क्योंकि जांच अधिकारी ने स्वयं प्रस्तुतकर्ता अधिकारी के रूप में कार्य किया है, जबकि प्रस्तुतकर्ता अधिकारी की नियुक्ति विद्युत बोर्ड द्वारा की गई थी। इस बात का कोई स्पष्टीकरण नहीं है कि प्रस्तुतकर्ता अधिकारी विभाग का मामला

प्रस्तुत करने के लिए जांच अधिकारी के समक्ष क्यों उपस्थित नहीं हुआ। इस मामले के विशिष्ट तथ्यों में, जांच अधिकारी द्वारा विभाग की ओर से स्वयं मामला प्रस्तुत करने तथा मामले की सत्यता या अन्यथा की जांच करने का कर्तव्य स्वयं अपने ऊपर लेने की कार्रवाई से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि इस मामले में जांच अधिकारी एक निष्पक्ष जांच अधिकारी के रूप में अपने कर्तव्य का निर्वहन करने में विफल रहा है। उसने प्रस्तुतकर्ता अधिकारी तथा जांच अधिकारी दोनों की भूमिका को अपने भीतर समेट लिया है तथा इस प्रकार उसने इस प्रकार कार्य किया है, जो प्रकृति न्याय के सिद्धांतों के अनुरूप नहीं है। इस संबंध में, इस न्यायालय को डी.के. यादव बनाम जे.एम.ए. इंडस्ट्रीज लिमिटेड (1993) 3 एससीसी 259: 1994 (1) पीएलजेआर 55 (एससी) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणी की याद दिलाई जाती है। डी.के. यादव (सुप्रा) के उक्त निर्णय में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों ने कहा है कि सेवा से बर्खास्तगी से संबंधित मामले में संबंधित कर्मचारी को नागरिक परिणामों का सामना करना पड़ता है और इस प्रकार यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत गारंटीकृत आजीविका के अधिकार से वंचित करने के बराबर है। बर्खास्तगी/सेवा समाप्ति के दंड के मामले में, जो प्रक्रिया लागू की जानी है वह न्यायसंगत, निष्पक्ष और उचित होनी चाहिए। इस मामले में, इस न्यायालय का विचार है कि जांच अधिकारी द्वारा अपने निष्कर्ष पर पहुंचने में अपनाई गई प्रक्रिया न तो न्यायसंगत है, न ही निष्पक्ष है और न ही उचित है। इस प्रकार यह न्यायालय इसे अनुमोदित नहीं कर सकता। यद्यपि यह अच्छी तरह से स्थापित है कि साक्ष्य के नियमों की तकनीकी बातें विभागीय कार्यवाही पर लागू नहीं होती हैं और यह बात सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 1964 में संघ भारत बनाम एच.सी. के मामले में अपने संविधान पीठ के फैसले में भी तय की जा चुकी है। गोयल ने ए.आई.आर. 1964 एस.सी.

पृष्ठ 364 के अनुच्छेद 27 में रिपोर्ट दी कि न्यायालयों में आपराधिक मुकदमों को नियंत्रित करने वाले तकनीकी नियम आवश्यक रूप से अनुशासनात्मक कार्यवाही पर लागू नहीं हो सकते हैं, लेकिन फिर भी, यह सिद्धांत कि दोषियों को दंडित करते समय इस बात का पूरा ध्यान रखा जाना चाहिए कि निर्दोष को दंडित न किया जाए, नियमित आपराधिक मुकदमों के लिए उतना ही लागू होता है जितना कि वैधानिक नियमों के तहत आयोजित अनुशासनात्मक जांच के लिए। 12. वर्तमान मामले में यह विवाद में नहीं है कि याचिकाकर्ता के खिलाफ आयोजित ऐसी अनुशासनात्मक कार्यवाही बोर्ड के विविध नियमों के नियम 166 के प्रावधानों के अनुसार आयोजित की गई है जिसे बोर्ड द्वारा अपनाया गया है जैसा कि प्रतिवादियों के विद्वान वकील द्वारा कहा गया है। इसलिए, वर्तमान मामले में जांच भी उन नियमों के तहत आयोजित की गई है जो प्रकृति में वैधानिक हैं। इसलिए, सर्वोच्च न्यायालय की उपरोक्त टिप्पणी इस मामले में पूरी ताकत से लागू होती है। इसके अलावा, इस न्यायालय का मानना है कि अपीलीय प्राधिकारी का निर्णय पूरी तरह से अस्वीकार्य है, क्योंकि अपना आदेश पारित करते समय अपीलीय प्राधिकारी ने उचित परिश्रम और उचित विवेक के साथ काम नहीं किया है और आदेश से यह पता नहीं चलता है कि आदेश पारित करते समय अपीलीय प्राधिकारी द्वारा प्रासंगिक सामग्रियों पर कोई विचार किया गया था। इसलिए, अपीलीय प्राधिकारी के आदेश को भी (1986) 3 एससीसी 103 में रिपोर्ट किए गए राम चंद्र बनाम भारत संघ के मामले में कानून की घोषणा के मद्देनजर बरकरार नहीं रखा जा सकता है।"

8. इसके अलावा, ***मुख्य सचिव और अन्य के माध्यम से उदय प्रताप सिंह बनाम बिहार राज्य*** के मामले में दिए गए फैसले के प्रासंगिक पैराग्राफ 34, 35 और 36 को उद्धृत करना आवश्यक है जो की ***2017(4) पीएलजेआर 195*** में रिपोर्ट किया गया:-

"34. अवैधता यहीं नहीं रुकती, बल्कि अनुलग्नक-6 के अनुसार इस तरह की पहल को पढ़ने से पता चलता है कि प्रस्तुतकर्ता अधिकारी की नियुक्ति नहीं की गई है, बल्कि जांच अधिकारी ने दस्तावेजों की जांच करने के लिए स्वयं प्रस्तुतकर्ता अधिकारी के रूप में काम किया है, जो अनुशासनात्मक नियमों के नियम 17(14) के तहत प्रस्तुतकर्ता अधिकारी को दिए गए अधिकार क्षेत्र का हनन है। नियम 17(14) के तहत प्रस्तुतकर्ता अधिकारी पर साक्ष्य प्रस्तुत करने और गवाहों की जांच करने का अनिवार्य कर्तव्य है, जिसे पूरा नहीं किया गया है, बल्कि जांच अधिकारी ने यह कर्तव्य अपने ऊपर ले लिया है। जांच अधिकारी द्वारा प्रस्तुतकर्ता अधिकारी को दिए गए उत्तरदायित्व के इस हनन की निंदा की गई है और इस संबंध में उच्चतम न्यायालय के (2010) 2 एससीसी 772 (उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सरोज कुमार सिन्हा) में दिए गए निर्णय का संदर्भ दिया गया है। फैसले के पैराग्राफ 28 में सुप्रीम कोर्ट ने जांच अधिकारी को सलाह देते हुए कहा है:

"28. अर्ध-न्यायिक प्राधिकरण में कार्यरत जांच अधिकारी स्वतंत्र निर्णायक की स्थिति में होता है। उसे विभाग/अनुशासनात्मक प्राधिकरण/सरकार का प्रतिनिधि नहीं माना जाता है। उसका कार्य विभाग द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य की जांच करना है, यहां तक कि दोषी अधिकारी की अनुपस्थिति में भी यह देखना है कि क्या आरोपों को साबित करने के लिए अखंडित साक्ष्य पर्याप्त हैं। वर्तमान मामले में उपरोक्त प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है। चूंकि मौखिक साक्ष्य की जांच नहीं की गई है, इसलिए दस्तावेज साबित नहीं हुए हैं और यह निष्कर्ष निकालने के लिए उन पर विचार नहीं किया जा सकता कि प्रतिवादियों के खिलाफ आरोप साबित हो गए हैं।"

35. इसी क्रम में मैं 1996 में दिए गए एक फैसले (1) पीएलजेआर 401 (पंचानन कुमार बनाम बिहार राज्य विद्युत बोर्ड) का भी

हवाला दूंगा, जिसमें एक प्रस्तुतकर्ता अधिकारी नियुक्त किया गया था, लेकिन वह अपने दायित्व का निर्वहन करने में विफल रहा और उसकी अनुपस्थिति में उसकी भूमिका जांच अधिकारी द्वारा निभाई गई। फैसले के पैराग्राफ 11 में पीठ की राय इस मुद्दे के लिए प्रासंगिक होगी:

"11. पक्षों के प्रतिद्वंद्वी तर्कों पर विचार करते हुए, यह न्यायालय इस राय का है कि इस मामले में जांच दोषपूर्ण रही है क्योंकि जांच अधिकारी ने खुद प्रस्तुतकर्ता अधिकारी के रूप में काम किया है, जबकि प्रस्तुतकर्ता अधिकारी की नियुक्ति विद्युत बोर्ड द्वारा की गई थी। इस बात का कोई स्पष्टीकरण नहीं है कि प्रस्तुतकर्ता अधिकारी की नियुक्ति क्यों नहीं की गई। प्रस्तुतकर्ता अधिकारी विभाग का मामला प्रस्तुत करने के लिए जांच अधिकारी के समक्ष उपस्थित नहीं हुआ। इस मामले के विशिष्ट तथ्यों में, जांच अधिकारी द्वारा विभाग की ओर से स्वयं मामला प्रस्तुत करने तथा मामले की सत्यता या अन्यथा की जांच करने का कर्तव्य अपने ऊपर लेने की कार्रवाई से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि जांच अधिकारी इस मामले में एक निष्पक्ष जांच अधिकारी के रूप में अपने कर्तव्य का निर्वहन करने में विफल रहा है। उसने प्रस्तुतकर्ता अधिकारी तथा जांच अधिकारी दोनों की भूमिका को अपने भीतर समेट लिया है तथा इस प्रकार से कार्य किया है जो प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुरूप नहीं है।

36. यह निर्विवाद है कि साक्ष्य प्रस्तुत करने अथवा साबित करने के लिए कोई प्रस्तुतकर्ता अधिकारी उपस्थित नहीं था। गोयल ने ए.आई.आर. 1964 एस.सी. पृष्ठ 364 के अनुच्छेद 27 में रिपोर्ट दी कि न्यायालयों में आपराधिक मुकदमों को नियंत्रित करने वाले तकनीकी नियम आवश्यक रूप से अनुशासनात्मक कार्यवाही पर लागू नहीं हो सकते हैं, लेकिन फिर भी, यह सिद्धांत कि दोषियों को दंडित करते समय इस बात का पूरा ध्यान रखा जाना चाहिए कि निर्दोष को दंडित न किया जाए, नियमित

आपराधिक मुकदमों के लिए उतना ही लागू होता है जितना कि वैधानिक नियमों के तहत आयोजित अनुशासनात्मक जांच के लिए।"

9. इसके अतिरिक्त, यह न्यायालय ***एलपीए संख्या 507/2017 (उपेन्द्र पंडित बनाम बिहार राज्य एवं अन्य)*** में हाल ही में दिए गए निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ 11 को उद्धृत करना भी आवश्यक समझता है, जो इस प्रकार है:-

"11. न्यायालय के मतानुसार, नियम 17(3) एवं (4) 2005 बहुत स्पष्ट हैं, जिसमें यह प्रावधान है कि जहां उक्त नियमों के अंतर्गत सरकारी सेवक के विरुद्ध जांच प्रस्तावित है, वहां अनुशासनिक प्राधिकारी प्रत्येक आरोप के समर्थन में कदाचार या दुर्व्यवहार के आरोप का सार तैयार करेगा या तैयार करवाएगा, उसमें सुसंगत तथ्यों का विवरण, दस्तावेजों की सूची और गवाहों की सूची होगी, जिनके आधार पर आरोपों को कायम रखने का प्रस्ताव है। इस प्रकार, वर्तमान मामले में अपीलकर्ता को दस्तावेजों की सूची और गवाहों की सूची उपलब्ध न कराना, जिसके आधार पर अनुशासनिक प्राधिकारी आरोप को कायम रखने का प्रस्ताव करता है। अनुशासनात्मक कार्यवाही में अपीलकर्ता के विरुद्ध लगाए गए आरोप तथा प्रस्तुतकर्ता अधिकारी की नियुक्ति के बिना कार्यवाही किया जाना अधिनियम 2005 के नियम 17 के प्रावधानों का स्पष्ट एवं गंभीर उल्लंघन है। नियम 17 (3) एवं (4) की अपेक्षाएं पूर्ण न किए जाने के कारण अपीलकर्ता को सेवा से बर्खास्त करने का दण्डात्मक आदेश कायम नहीं रखा जा सकता। अपीलकर्ता द्वारा प्रस्तुत अपील को खारिज करने के दिनांक 29.12.2005 के बर्खास्तगी आदेश तथा दिनांक 30.04.2008 के आदेश दोनों को अपास्त किया जाता है। विद्वान एकल न्यायाधीश का आदेश भी कायम नहीं रखा जा सकता है और इसे निरस्त किया जाता है।"

10. उपरोक्त के आलोक में, यह स्पष्ट है कि तीनों निर्णयों में माननीय न्यायालय ने माना है कि प्रस्तुतकर्ता अधिकारी की अनुपस्थिति में की गई कोई भी

विभागीय कार्यवाही कानूनी रूप से त्रुटिपूर्ण है। इसलिए, इन दो मुद्दों के आधार पर कि याचिकाकर्ता के मामले में सीसीए नियम 2005 लागू होते हैं और विभागीय कार्यवाही प्रस्तुतकर्ता अधिकारी की अनुपस्थिति में की गई थी, यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि कार्यवाही कानून की दृष्टि से गलत है।

11. इस प्रकार, उप महानिरीक्षक, तिरहुत रेंज, मुजफ्फरपुर द्वारा पारित दिनांक 26.01.2014 का आदेश (रिट याचिका का अनुलग्नक-4), पुलिस महानिरीक्षक, मुजफ्फरपुर द्वारा पारित ज्ञापन संख्या 1092 द्वारा जारी दिनांक 27.05.2014 का आदेश (रिट याचिका का अनुलग्नक-4 ए) तथा अनुशासनात्मक कार्यवाही अपील संख्या 29/2013 में ज्ञापन संख्या 5029 के तहत जारी दिनांक 20.11.2014 के आदेश (जैसा कि रिट याचिका के अनुलग्नक-8 में निहित है) को एतद्द्वारा निरस्त किया जाता है तथा अपास्त किया जाता है।

12. तथापि, यह न्यायालय याचिकाकर्ता के विरुद्ध जारी आरोपपत्र को निरस्त नहीं करता है। प्रतिवादी प्राधिकारियों के लिए उक्त आरोपपत्र के आधार पर पुनः जांच करना खुला है, लेकिन ऐसी जांच कानून के अनुसार ही की जानी चाहिए। यह भी स्पष्ट किया जाता है कि यदि ऐसी जांच शुरू की जाती है, तो उसे इस निर्णय की प्रति प्राप्त होने या प्रस्तुत किए जाने की तिथि से आठ महीने की अवधि के भीतर समाप्त किया जाना चाहिए। यदि निर्धारित अवधि के भीतर ऐसी कोई जांच पूरी नहीं की जाती है, तो उक्त अवधि की समाप्ति पर आरोपपत्र स्वतः ही निरस्त हो जाएगा।

13. उपरोक्त अवलोकन/निर्देश के साथ, इस रिट याचिका को ऊपर बताई गई सीमा तक अनुमति दी जाती है। लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।

(डॉ. अंशुमन, न्यायमूर्ति)

अश्विनी/-

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नही किया जा सकता । समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।